AMOGHVARTA
ISSN : 2583-3189

एकात्म मानववाद दर्शन के सन्दर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन

ORIGINAL ARTICLE

Authors
हुक्कम सिंह, गुरेन्द्र सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, हेमवती नन्दन बहुगुणा
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खटीमा, उत्तराखण्ड, भारत

शोध सार

एकात्य मानववाद विचारदर्शन ने मानव के व्यस्टि तथा विभिन्न समस्टियों के परास्पर रिश्तों को मुख्यतः अपने विवेचतना का विषय बनाया। एकाव्य मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय की अस्तीय। विशिष्ट एवं मौलिक रचना है। कैरित्य वै अर्थशास्त्र तिलक के गीता रहस्य और माहात्मा गांधी के हिंद स्वराज के पष्चात्। पंडित दीनदयाल उपाध्याय–रचित एकात्म मानववाद राजनीतिक महत्वपूर्ण योगदान है। एकात्मा भारतीय सस्कृति का केडीप विचार है। वस्तुतः उपाध्याय का विचार एकात्मता दर्शन है लेकिन वह मानव के लिए है। उपाध्याय मानव को ईश्वर के खिलाफ नहीं यत्रावत भी नहीं वरन एक सवेदनशील एवं स्वंयपूर्ण इकाई के नाते प्रस्तुत करना चाहते है।

मुख्य शब्द

एकात्म मानववाद, एकात्मता, दर्शन, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, राजनीतिक चिन्तन.

प्रस्तावना

एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है मानव जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म सम्बन्धों का दर्शन। यद्यपि यह सत्य है कि मानव–जीवन के विविध अंगोपांगों तथा मानव प्रकृति की विभिन्न शक्तियों में विविधता होती है, किन्तु यह विविधता आन्तरिक एकता के ही विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति हुआ करती है इसलिए इन सब में पारम्परिक अनुकूलता और पूरकता होती है। मानव का इस प्रकार समग्र एवं समन्वित विचार करते हुए जीवन के सभी अंगों का और व्यवस्थाओं का विचार कर संरचना कि जाये तो सम्भवतः राष्ट्रियता मानवता, विश्व शान्ति आदि कोष्ठ आदर्शों की दिशा में अन्तर्विरोध दूर होकर वे एक दूसरे के पूरक बनेगे और मानव को उद्देश्यपूर्ण सुखी जीवन प्राप्त होकर एकात्म मानववाद का दर्शन साकार होगा। एकात्म मानववाद एक विचारधारा है। एकात्म मानववाद मानव जीवन का सम्पूर्ण सृष्टि के एक मात्र सम्बन्ध का दर्शन है। इसका वैज्ञानिक विवेचन दीनदयाल उपाध्याय ने किया था। एकात्म मानववाद राष्ट्रीय स्वय संघ का मार्गदर्शक दर्शन है। यह दर्शन दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 22 अप्रैल 1965 से 25 अप्रैल 1965 ई० को मुम्बई में दिये गये चार व्याख्यानों के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसकी तुलना साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद से नहीं कि जा सकती। सृष्टि में समय–समय पर विशेष उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति हेतु दिव्य आत्माओं का जन्म होता रहा है। यह परम्परा रामकृष्ण, बुद्ध, महावीर से होते हुए स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द, तिलक, गाँधी के साथ पं. दीनदयाल उपाध्याय पर आकर जैसे स्थिरता प्राप्त कर लेती है। दीनदयाल जी राजनीति में रहते हुए भी जैसे कमल की भाँति उससे अछूते ही रहे। वे एक सामाजिक चिंतक, राजनीतिक विश्लेषक,

दर्शनशास्त्री, अर्थशास्त्र के ज्ञाता अध्यात्म जगत के नव व्याख्याता थे। उनके द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववादी सिद्धान्त मानव समाज को एक सूत्र में बाँधकर राष्ट्रोत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

एकात्म मानव दर्शन का प्रारम्भिक उदयकाल की अगर हम बात करें तो यह स्पष्ट होता है कि इसके दो विचारधारा प्रथम 'पश्चिमी विचारधार' तथा द्वितीय 'भारतीय दर्शन विचारधारा'। दोनों विचारधाराओं के आधार पर एकात्म मानव दर्शन को स्पष्ट किया जा सकता है। उक्त दोनों विचारधाराओं का संक्षिप्त इतिहास कालखण्ड की विवेचना इस प्रकार हैः

पश्चिमी विचारधारा

जब सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न मत–मतान्तर, संस्कृति, परम्परा, विचारधारा के उच्च स्तर पर विद्यमान थी। तब 16वीं शताब्दी के यूरोपियन पुनर्जागरण के दौरान भिन्न–भिन्न विचार मतों का एक वैश्विक आयाम का उदय हो रहा था और साहसिक विश्व यात्रियों ने सम्पूर्ण विश्व का भौगोलिक रुप से भ्रमण कर चुके थे और समस्त विश्व को एक नई सुबह समाज का उदयकाल चौराहे पर खड़ी थी। उसी समय विज्ञानवाद भौतिकवाद तथा मानववाद जैसे विचारधारा ने ईश्वरवाद को चुनौती देना प्रारम्भ हो गया।[1] ईश्वरवादी सत्ताओं को केवल स्मरण हेतु आंका जाने लगा और समाज एक नई दिशा की ओर चल पड़ा। भगवत्कृपा जैसे आस्थाओं को चुनौती का सामना करना पड़ा था। तब जाकर एक विवेक तर्क शकित, विज्ञानवाद ने अपना स्वरुप स्थित बनाया। कर्मकाण्ड रीति–रिवाज परम्परा का लोप होना प्रारम्भ हो गया है। इसका मूल कारण श्विज्ञानवादश् का उदय होना था। यूरोप का कायापलट हो चुका था। थियोक्रेसी को चुनौती देकर सेक्युलरिज्म, लोकतंत्रात्मक व्यक्तिवाद तथा समाजवाद पूँजीवाद व साम्राज्यवाद का प्रचलन प्रबल रूप से विद्यमान हो गया। इटैलियन पुनर्जागरण, यूरोपवासी हो गया। अगोचर सत्ताओं की स्थापना हुई। पदार्थ और उसकी प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक व समाजशास्त्रीय विवेचन प्रारम्भ हुआ। मेकावली से लेकर मार्क्स व मिल तक की एक विचारक श्रृंखला उत्पन्न हुई, जिसमें से 'पार्थिव मानववाद' उसकी 'लौकिक प्रवृत्ति' एवं अनेक वादों का विकास हुआ। 'राष्ट्रीय राज्य' की नवीन राजनीतिक इकाई उत्पन्न हुई, व्यक्तिवाद व समाजवाद की परस्पर उग्र विरोधी धारणाओं का प्रणयन हुआ है।[2] 16वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के उठापटक के दौरान मानवता की एक नई सोच जिसमें विज्ञानवाद ने प्रमुख स्थान ले चुका था। पश्चिम की इस विज्ञान को माध्यम बनाकर विज्ञानवाद ने अन्य एशियाई और अफ्रीकी महाद्वीपों में भी अपना अस्तित्व स्थापित किया। इन्हीं पश्चिमी विचारधाराओं का प्रभाव अन्य सम्पूर्ण समाजों पर पड़ना प्रारम्भ को चुका था। प्रारम्भ में तो पश्चिमी विचारधाराओं को तो एशियाई देश के लोग सिरे से खारिज कर दिये थे पश्चिम ज्ञान–विज्ञान के एशियाई देश के लोग स्वाभिमान को चोट पहुँचेगा ऐसा महसूस करते थे। इन्हीं पश्चिमी की विचारधारा ने अपने अमानवीय धार्मिक सत्ताओं, तानाशाही प्रवृत्तियों तथा अतितीव्र क्रूरताओं का दूसरे लोगों पर प्रभाव डालना जिससे इन्होंने मानवता को चौराहे पर ला खड़ा कर दिया है। अतरू यही यूरोपियन पुनर्जागरण ने अपने मत– परम्परा का विरोध करते हुए ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देकर मानव समाज की पद–प्रतिष्ठा निरंकुश सामाजिक व्यवस्था के विरोध में व्यक्तिवाद को प्रश्रय देना।[3] पान्थिक विश्ववाद के विरोध में लौकिक सत्ता, ईश्वरीय सत्ता के विरोध में मानवीय साहस को स्थापित करना रहस्यात्मक सच्चाई के विरोध में विवेक को स्थापित करना यूरोपियन पश्चिमी पुनर्जागरण और श्मानववादश् के उदय का प्रमुख कारण था। चूँकि पं. दीनदयाल उपाध्याय पश्चिमी जीवनशैली को तो कहीं श्रेष्ठ समझते हैं लेकिन पश्चिमी विकृति को पूर्ण रुप से असहज महसूस करते है। इसमें भारत को भी पश्चिमी की अनुकृति के अनुरुप बना रहे हैं जिससे उसमें भ्रम की स्थिति बन रही है। पं. दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम की पारस्परिक तालमेल को सही नहीं मानते हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का मत हैं कि पश्चिम की अच्छी बातों में भी एक पारस्परिक तालमेल का अभाव है। राष्ट्रवाद प्रजातंत्र, समाजवाद या समता समाजवाद, सभी के मूल में समता का ही भाव है, समता समानता से भिन्न है। इसे (Equability) का पर्याय मान सकते हैं। इन तीन प्रवृत्तियों में से इनका जन्म हुआ है, किन्तु अपने में कोई भी विचार पूर्ण नहीं है। इतना ही नहीं इनमें से प्रत्येक व्यवहार में एक–दूसरे का घातक बन जाता है। राष्ट्रवाद विश्व शान्ति के लिए खतरा पैदा करता है। प्रजातंत्र पूँजीवाद के मेल से शोषण का कारण बन गया। पूँजीवाद को समाप्त कर समाजवाद आया तो उसने प्रजातंत्र तथा उसके साथ ही व्यक्ति की स्वतंत्रता की बलि ले ली। अतः आज पश्चिम

के सामने यह प्रश्न खड़ा है कि इन सभी अच्छी बातों का तालमेल कैसे बैठाया जाय? पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिमी विचारों की घोर आलोचना किये और वहाँ के व्यक्तिवादी, जड़वादी, एकांगी दृष्टिकोण जीवन का खण्डात्मक विचार तथा उपभोगवाद जैसी विकृति को चुनौती देते हुए अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं किः

1. पश्चिमी समाज की जीवनशैली तथा विचार ज्ञानेन्द्रियों पर आधारित होता है जो कि पूर्ण ज्ञान क्षणिक मात्र होता है। व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान उसके प्रश्न से प्राप्त होती है। जबकि भारतीय दर्शन में समग्रता का दर्शन मिलता है। समग्रता हमारा विधि केन्द्र होता है। पश्चिमी समाज में इसका लोप होता है वहाँ एकांगी विचारों को प्रश्रय मिलता है।
2. पं. दीनदयाल जी कहते हैं कि पश्चिमी विचारधारा काफी भ्रमित तथा असंयोजित होता है।
3. पं. दीनदयाल जी ने पश्चिमी की विचारधारा में जो पूँजीवाद, शोषणकारी समाजवाद का उदय हुआ उसका कारण कहीं न कहीं प्रकृति का दोहन है। प्रकृति का उच्छृखल दोहन सम्पूर्ण मानव जगत के लिए एक अभिशाप है परिणाम बहुत ही भयानक होगा।
4. पश्चिमी दुनिया के शोषणकारी साम्राज्यवादी, उद्योगवाद के कारण ही यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने पश्चिमी समाज को ही नहीं बल्कि समस्त दुनिया के विचारधारा को हिलाकर रख दिया है।
5. आक्रामक तथा शोषणवादी विचारधारा को प्रश्रय देने वाले पश्चिमी दुनिया ने व्यक्ति को स्वार्थी बना दिया है। मनुशत्व के जो दैवीय प्रारब्धता भी उसे नष्ट कर दिया है। उसकी इति हो गयी है। इसका प्रभाव अन्य समाज पर पड़ता दिखाई देता है।

चूँकि पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने पश्चिमी विचारधारा को विश्लेषित करते हुए कहते हैं कि पश्चिम का विचार पंथ परम्परावादी हैं। एकेश्वरवादी से युक्त है, जिसका परिणाम चर्च राज्य के प्रतिक्रिया लौकिक राज्य, ईश्वरवाद की प्रतिक्रिया में 'मानववाद', निरंकुश समाज के प्रतिक्रिया स्वरुप व्यक्तिवाद, शोषण के प्रतिक्रिया में समाजवाद का उदय हुआ। जो की मनुष्य को जड़वादी बनाकर रख दिया, यही भौतिकवादी, जड़वादी विचारधारा ने मेजिनी द्वारा की गयी 'मानवतावादी यूरोपिय राष्ट्रवाद' जैसी विचारधारा का कल्पना ही बना रह गया स्थापित न हो सका। जिसका दुष्परिणाम आज स्वयं यूरोपिय देशों के साथ–साथ अमेरिका व रूस की साम्राज्यवाद का [4] पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का राष्ट्रवादी विचार पश्चिम के विचारों के खिलाफ का कारण उसकी तर्कसंगत बुराईयों तथा विदेशियत जैसे रवैया था, उन्होंने स्पष्ट किया कि– यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं है, विकृति का द्योतक है। जिस मत्स्य न्याय या जीवन संघर्ष को पश्चिम के लोगों ने ढूंढ निकाला, उसका ज्ञान हमारे दार्शनिकों को था।

मानव जीवन में काम क्रोधादि षड्विकारों को हमने स्वीकार किया है, किन्तु इन सब प्रवृत्तियों का हमने अपने संस्कृति का या शिष्ट व्यवहार का आधार नहीं बनाया। अतः उपरोक्त पं. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा पश्चिमी विचारधाराओं के समस्त प्रवाह को मानवीय सभ्यता की मुख्यधारा मानकर उसमें डूबने को तैयार नहीं है और मानव की मानववादी विचार के लिए तथा व्यक्ति के राष्ट्रीय स्वत्व को पुनः स्थापित करने के लिए 'एकात्म मानववाद' को एक प्रमुख विचार चिन्तन को मुख्य रूप से प्राथमिकतादेते है। इसके लिए उन्होंने समस्त चर पर जीवधारी रुपी ब्रह्माण्ड को ''यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्ड'' का नारा लगाते हुए समस्त विश्व दुनिया के मानवता को विकसित करने के पक्षधर हैं और इसी को मानवता का उद्गम स्थल मानते हैं इसी आधार पर मानव समाज का कल्याण होगा। निःसंदेह आज विश्व से हम कुछ लें, परन्तु विश्व ऐसी स्थिति में नहीं है कि हमारा कुछ मार्गदर्शन कर सकें। वह तो स्वयं चौराहों पर है। ऐसी अवस्था में उससे किसी प्रकार का मार्गदर्शन नहीं पा सकते। हमें तो यह सोचना चाहिए कि अब तक की विश्व की प्रगति को देखते हुए कहीं ऐसी संभावना है या नहीं किहम उसकी प्रगति में अपना योगदान कर सकें? विश्व की प्रगति का अध्ययन कर लेने के बाद हम भी उन्हें कुछ दे सकते हैं, यह विचार हमें विश्व का अंग बनकर करना चाहिए। हम केवल स्वार्थी न बनकर, विश्व की प्रगति में सहयोगी बनें। यदि हमारे पास कोई वस्तु हैं, जिससे कि विश्व का लाभ होगा तो वह देने में हमें कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। मिलावट के युग के

अनुरूप, विशुद्ध विचारों को विकृत करके उनका मिश्रित रुप न लें, बल्कि उनको सुधार करके तथा मंथन करके ग्रहण करना चाहिए। हमें विश्व पर बोझ कर नहीं, उसकी समस्याओं के छुटकारें में सहायक बनकर रहना चाहिए। हमारी परम्परा और संस्कृति विश्व को क्या दे सकती है, यह में विचार करना है।

भारतीय दर्शन परम्परा का प्रभाव

भारत भारतीयता और इसमें स्थित लोग स्वयं में एक परम्परा, मूल्य, एकात्मक भाव है। भारतीय संस्कृति स्वयं में एक निरन्तर चलने वाली गतिमान अवस्था है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, मूल्य, परम्परागत रुप से धर्म कर्म की वेदी है यहाँ कोई किसी से अछूता नहीं है एकता में विविधता लिए हुए विशेषता विद्यमान है। भारतीय मनीषा का एक अलग पहचान है। सम्पूर्ण मानवता का एकात्म रुपी केन्द्र है। भारतीय दर्शन में हमारे राष्ट्र की आत्मा वेदन, पुराण, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि पवित्र ग्रन्थ हमारे लिए जीवन का प्रकाश पुंज है। ये हमारी आत्मा है और सम्पूर्ण भारतवंशी लोग इसका पालन पोषण करते हैं। हमारे भारतीय समाज की एक अलग अलख विराजमान है। चाहे वह मेरे आदिम समाज की सनातन धर्म है या फिर हमारे ऋषि, महात्माओं, साधु–संत, राम, कृष्ण, गन्धर्व, आकाश, पाताल, दिशा, सूर्य, तारे, चन्द्रमा, देवी–देवता नर–नारी गन्धर्व किन्नर सम्पूर्ण भारतीय धरा का एक एकात्म समुच्चय पुंज हैं और यह एक–दूसरे के पर्याय है। यह एकात्मकता का भाव सम्पूर्ण भारतीय लोग महसूस और अमल करते हैं। हमारे भारतीय समाज में विभिन्न सामाजिक संस्थाएं जैसे विवाह, परिवार, शिक्षा, समाज, जाति–भाव, सम्मान आदि एक–दूसरे के प्राणदायिनी है। एक के बिना दूसरा तिनके के समान निर्जीव है। यहाँ हमारे भारतीयता की मूल व्यावहारिक विशेषता है। हमारे सुख का केन्द्र श्मानवश् और मानव ही एक–दूसरे के संरक्षक होते हैं। चाहे वह मूर्त रुप से या अमूर्त रुप से, हमारा मानवता का केन्द्र बिन्दु मानवता की पूजा होना है।[5]

सर्वे भवन्तु सुखीनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्यवेत्।।

उपरोक्त श्लोक भारतीय सामाजिक सभ्यता की विशेषता रही है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, परम्परा का स्पष्टतः का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भारतीय सभ्यता का पूर्ण प्रवाह आदि अनन्त काल से गतिमान हैं। भारतीय मौलिकता का शक्ति स्रोत इस भारत भूमि पर जन्में महापुरुषों, ऋषि, महात्माओं, ओजस्वी पूर्ण देवी देवताओं के यश स्मृतियाँ 184 उनका आदर्श चिन्तन आज भी राष्ट्र के लिए धरोहर है। हमारे ज्ञानी पुरुषों द्वारा 'कृणवन्तों विश्वमार्यं' का आह्वान किया था और भारतीय संस्कृति 'आत्माहं सर्व भूतेषु' से ओत–प्रोत को स्वीकार करने वाली साथ ही मानव का ही कल्याण नहीं यद्यपि सम्पूर्ण मानवेत्तर जीवो वनस्पतियों का कल्याण करने के एकात्मवादी विचार–चिन्तन के अनुगामी हैं।

इस आधार पर पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपने चिन्तन में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आगे उन्होंने स्पष्ट किया है कि विश्व के अन्य संस्कृतियों में विशेषता लिए हुए होते है जिसमें केवल एक पक्ष को ही महत्व प्रदान किया जाता है परन्तु भारतीय संस्कृति सभ्यता में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक प्राणि के रुप में पद–प्रतिष्ठा गरिमा प्राप्त है। मानव मूल्य का सरोकार व्याप्त है। मानव के चतुर्विध सुख हेतु चतुर्थ पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की व्यवस्था दी गयी है इस प्रकार से पं. दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति सभ्यता को पुनरू प्रतिष्ठित करने का पुण्य कार्य किये हैं। भारतीय संस्कृति एक अनादिकाल से सभ्यता, परम्पराओं से युक्त धनी राष्ट्र है। श्री अरविन्द ने भारतीय संस्कृति सभ्यता और परम्परा की सारगर्भित विवेचना करते हुए स्पष्ट करते हैं कि यूरोप शताब्दियों में जीता है, और एशिया युगों में। यूरोप राष्ट्रों में बंटा है, एशिया सभ्यता व संस्कृतियों मे। सारे यूरोप की एक ही सभ्यता है, जिसका स्रोत एक ही है, वह पुरानी और कहीं से ली हुई है। एशिया में तीन सभ्यताएँ है, जिनमें से हर एक मौलिक और स्थानीय है। यूरोप की हर चीज छोटी और अल्पजीवी है। उसे अमरता का रहस्य नहीं मिला है। आज यूरोप विज्ञान, दर्शन, सभ्यता आदि के जिन शिखरों पर हाँफते–हाँफते चढ़ रहा है, उन ऊँचाईयों पर एशिया बहुत पहले चढ़ चुका है, 185 लेकिन उसके बाद कुछ ढील आ गई थी और उसकी गति धीमी गई थी। कुछ हानि और गड़बड़ हुई थी, ह्यास और अधोगति आई। भारत के

लिए आगे श्री अरविन्द लिखते हैं– संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है जो इस तरह इतने दिनों तक विदेशी राज्य के नीचे पिसकर भी ऐसा अदम्य शक्ति दिखला सका हो। यही नैतिक बल, यही जड़ तक पहुँचने की क्षमता, अपने श्स्वश् के ऊपर पूरा अधिकार– ये एशिया की शक्ति के रहस्य हैं। शास्त्र हमें बतलाते हैं जो उसके ऊपर शासन कर सके, वही जगत का स्वामी हो सकता है। 'स्वराष्ट्र' बन सकता है।[6]

वस्तुतः उपरोक्त विचार चिन्तन से स्पष्ट होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय और श्री अरविन्द दोनों लोगों का विचार चिन्तन समान हैं। दोनों चिन्तक भारतीय संस्कृति और सभ्यता का पूर्ण जोर रुप में श्रेष्ठता, अकर्मण्यता का विचार रखते हैं। परन्तु मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य जैसे ऐतिहासिक कालखण्ड में दोनों विद्वानों का मत भिन्न है। दोनों लोगों का चिन्तन एक दूसरे से अलग है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी स्पष्ट करते हैं कि भारत की राजनीति में विदेशी ताकतें भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करने लगी थी इन विदेशी ताकतों को मुँहतोड़ जवाब भारत के पाण्डित्यपूर्ण से युक्त आचार्य चाणक्य और मौर्य साम्राज्य ने करारा प्रहार किया। जिसके कारण उपाध्याय जी अखिल भारतीय दृष्टि के आधार पर सांस्कृतिक एकता (भारत के संदर्भ में) को स्थापित करने वाले भारतीय चिन्तन को एक नई दिशा प्रदान करने वाले अद्वैतवाद के संकलकर्त्ता आचार्य शंकराचार्य और राजनीतिक एकत्व के लिए सदैव प्रयत्नशील चाणक्य को वर्तमान संदर्भों में उच्च स्थान और अनुकरणशील भाव रखते हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने कौटिल्य के कूटनीति, राजनीति तथा भारतीय परिणति के लिए जो मार्गदर्शन दिये हैं उसे इन्होंने भारत 186 विविधत्व राजनीतिक, सांस्कृतिक का विकास इन्हें ही वरेण्य था।[7] अतः पं. दीनदयाल जी के चिन्तन–विचार में 'एकात्मक शासन' की वकालत की। अतः पं. दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के शुक्ल पक्ष का बहुत ही अच्छे ढंग से विचार प्रस्तुत किये है। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण चराचर जगत को एक संकलित रुप में मानती है अर्थात् एकात्मवादी दृष्टिकोण की उपलब्धता लिए हुए है। भारतीय जीवन आध्यात्म से परिपूर्ण है। जिसके केन्द्र में मानव की पूर्णता स्थित है। पं. दीनदयाल जी ने कहा कि प्रकृति के शाश्वत तथा खोजे हुए नियम 'धर्म' है। जिसमें राजा, प्रजा, समाज, व्यक्ति सभी लोग एक दूसरे के कारण पर्याय है। सुसंयमित दिखाई पड़ते हैं। 'वादे वादे जायते तत्व बोधारू' के भारतीय परम्परा तथा उपनिषदों व दर्शनों की अगुणिक संस्कृति तथा परम्परा से भरा पड़ा है। पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीयता के धरा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यहाँ भारत भूमि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदांतिश् से पूर्ण है जितने विद्वान उतने प्रकार के विचार–विमर्श भारत के संदर्भ में रखते हैं भारत का समाज दर्शन 'विरापुरुषवादी' से युक्त है जो कि चिति मूलक के रूप में राष्ट्र को धारण किये हुए हैं। जो मनुष्य की चतर्पुरुषार्थी की आवश्यकता है।

उसे भारत का निजी केन्द्र के रूप में स्थित है। भारत अपने आप में 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे और आत्मवत् सर्वभूतेषु' से युक्त समन्यववादी विचारों के अनुयायी है। पं. दीनदयाल के चिनतन में भारतीय संस्कृति को और भी स्पष्ट विचार गीता के इस श्लोक में स्पष्ट होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– 'ये यथा मां प्रपधन्ते तांस्यथैव भजाम्यहम्' अर्थात् जो मुझे जिस रूप में भजता है मैं उसे उसी रूप में मिल जाता हूँ। अतः भारत में विभिन्न मत मतान्तर को मानने वाले व भिन्न–भिन्न देवी देवताओं के आराध्य देवों को मानने वाले हैं लेकिन सभी एक–दूसरे के पूरक है।8 पं. दीनदयाल के विचार बोध में भारतीय संस्कृति को एक 'यज्ञमयी' जिसके भाव में इदम् न मम् (अर्थात् यह मेरा नहीं है) का भाव होता है इस प्रकार से पं. दीनदयाल जी ने भारतीय संस्कृति का तो गुणगान बड़े ही सहज भाव से किये किन्तु इसमें भी कहीं न कहीं लघु तथा क्षणिक मात्र भी कुछ कमियाँ है वे इनको भी स्पष्ट किये हैं। वे लिखते हैं– हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का विचार किया है, लेकिन हम कोई पुरातत्वेत्ता नहीं है। हम किसी पुरातत्व संग्रहालय के संरक्षक बनकर नहीं बैठना चाहते। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं, अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। हमें अनेक रुढ़ियाँ समाप्त करनी होंगी, बहुत से सुधार करने होंगे। आज यदि समाज में छुआछूत और भेदभाव घर कर गये हैं, जिनके कारण लोग मानव को मानव समझकर नहीं चलते और जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं, हम उनको समाप्त करेंगे। पुरानी संस्थाओं में उत्पन्न स्वार्थों के विषय में उपाध्याय कहते हैं– पुरानी संस्थाओं में जिनका निहित स्वार्थ है, उन्हें धक्का लगेगा। कुछ लोग जो प्रकृति से अपरिवर्तनवादी हैं, उन्हें भी सुधार और सृजन के इन प्रयत्नों से कुछ कष्ट होगा। किन्तु बिना औषधि के रोग ठीक

नहीं होता, व्यायाम का कष्ट उठए बिना बल नहीं आता।[9]

अतः हमें यथास्थिति का मोह त्यागकर नवनिर्माण करना होगा, दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम की विकृति के प्रति सावधान थे, भारतीय संस्कृति के उपासक थे। उनकी भारतीय प्रकृति, समन्वय दृष्टि वाली थी, अतः न वे किसी विदेशी विचार को एकदम हेय मानते थे तथा न ही हर स्वदेशी चीज को वरेण्य। उनका सूत्र था, हम मानव के ज्ञान और उपलब्धियों का संकलित विचार करें। इन तत्वों में जो हमारा है उसे 'युगानुकूल' और जो बाहर का है उसे देशानुकूल ढालकर हम आगे चलने का विचार करें। स्वदेशी को युगानुकूल व विदेशी को स्वदेशानुकूल बनाने की अपनी मानसिकता के कारण उन्होंने कहा, हम भारत को न तो किसी पुराने समय की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं और न रूस या अमेरिका की अनुकृति। प्रजातंत्र और समाजवाद दोनों परस्पर विरोधी न होकर समन्वित हो सकते हैं, किन्तु समाजवाद राज्याधिष्ठित अथवा शासन केन्द्रित नहीं होगा। राज्य को समाज की एकमेव प्रतिनिधि संस्था मानना भूल है। इसी मान्यता के कारण राज्य को समाप्त करने का वादा करके भी कम्युनिज्म ने राज्य को सर्वग्राही बना दिया। समाज अपने हित के लिए कुटुम्ब से लेकर राज्य तक तथा विवाह से लेकर सन्यास तक अनेक संस्थाओं का निर्माण करता है। समाजवाद और प्रजातंत्र दोनों की सफलता, गैर–सरकारी, राजनीतिक निरपेक्ष आन्दोलनों तथा शिक्षा पर निर्भर है। लोक संस्कार का सर्वाधिक महत्व है। दयानन्द, गांधी और हेडगेवार ने जिस प्रकार प्रेरणा पैदा की, उस ओर यदि देश का ध्यान गया तो समाज की धारणा शक्ति प्रबल होगी। इससे ही राष्ट्र की श्चितिश् जागृत होकर उसका 'विराट' प्रबल होगा। भारत पर पाश्चात्य विचारों के आरोपण का प्रतिकार करके, विश्व में भारत की स्वतंत्र छवि को उभार सकें। अपने दल के विषय में उन्होंने कहा– हमें ज्ञान का आदान–प्रदान विश्व के प्रत्येक देश से करने में कोई सोच नहीं होना चाहिए, पर ऐसा करते समय हमें अपने जीवन मूल्यों का स्मरण होगा। भारतीय जनसंघ किसी पार्टी की वैकल्पिक पार्टी मात्र नहीं है, वरन् एक नवीन जीवन दृष्टि लेकर चलने वालों का राष्ट्रीय आन्दोलन है। जनसंघ भारतीय आत्मा का साक्षात्कार करने वाले उन लोगों का आन्दोलन है जो केवल विरोध के लिए नहीं जीते हैं वरन् देश को निर्माण की नई राह पर तीव्र गति से ले जाना चाहते हैं। दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत एकात्म मानव दर्शन की यही ऐतिहासिक व तात्त्विक पृष्ठभूमि है। इतिहास की वह धारा, जिसके कारण यूरोप तथा एशिया में पुनर्जागरण का संचार हुआ, परिणामस्वरुप पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों में परस्पर मंथन हुआ।[10]

पाश्चात्य विचार व भारतीय संस्कृति की तात्त्विक पृष्ठभूमि में, जहाँ पाश्चात्य प्रयोगों तथा भारत की प्राचीन संस्कृति का महत्व है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर भारत का राजनीतिक चिन्तन निर्णायक रूप में एकात्म मानव दर्शन के सृजन का कारण बना। इस प्रकार हम महसूस करते हैं कि दीनदयाल उपाध्याय ने बहुत विवेकपूर्वक पश्चिमी विचारधारा व भारतीय संस्कृति में मेल बैठाने का प्रयत्न किया, लेकिन कभी–कभी भारत के प्रति उनकी भक्त दृष्टि तथा पश्चिम के प्रति उनकी नाराजगी कुछ अतिवादी बातों के लिए कारणीभूत बनती है। वस्तुतः उनके व्यक्तित्व का मुख्य स्वर संतुलनवादी है, तो भी उनके चिन्तन में भारत व पश्चिम का एक द्वन्द्व निरन्तर बना रहता है। अपनी इस ऐतिहासिक व तात्त्विक पृष्ठभूमि पर एकात्म दर्शन ने अपने को किसी रुप में रूपायित किया, अब हम उसकी अवधारणाएं तथा तर्कसंगतता पर विचार करेंगे।

एकात्म मानववाद

एकात्म क्या है? भारतीय विचार दर्शन का वैदिक विचारधारा की जन्मदात्री है जो कि विश्ववादी विचारधारा को अपने आवरण में समाहित किया है जो कि 'माता भूमिः पुत्रों अहम् पृथिव्याः' अर्थात् भूमि माता है तथा हम पृथ्वी के पुत्र है। भारत एक 'आर्यत्व' को स्थापित करता है। जिसमें मानवता का परिचय उसके संस्कार सम्पादन का द्योतक माना गया है भारत के वैदिक आध्यात्मिक परम्परा से पूर्णवत है जो समाज की समता व राष्ट्रीय समृद्धि का परिचायक है। भूमि तथा जनजीवन का भावात्मक तादात्म वैदिक काल ही भारत में परिलक्षित दिखाई देता है। ऋग्वेद में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाई पड़ता हैः

सं गच्छध्वं सं बदध्वं, संत वो मनांसि जानता।
देवा भागम् यथा पूर्वे, संजानाना उपासते।

समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो, यथा व सुसहासति।।

अर्थात् दान, यज्ञ गौपालन व कृषि– अर्थव्यवस्था की तत्कालीन समाजशास्त्रीय विवेचना सामाजिक जीवन की समताप समरसता के रूप दिखाई देता है। चूँकि भारतीय वैदिक विचारधारा ब्रह्मवादी से परिपूर्ण है। मनुष्य को ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु प्रेरित करने का अवसर प्रदान करती है तथा वनस्पतिक प्रकृति के प्रति पूज्य भाव रखने वाली है। मानवता का पूर्ण पाठ पढ़ाने वाली जागृत मनोवृत्तियों को प्रोत्साहित करने का उद्देश्य प्रदान करती है। मानवता के सम्पूर्ण जैविक घटक को प्रभावित करती है। उनके जीवन के प्रत्येक लघु अथवा दीर्घ परम्परा प्रभावित होती है। मानव के सुखी जीवन को लौकिक करने वाली बाह्य और आन्तरिक ब्रह्म शक्ति को परिलक्षित करती है। जो मनुष्य प्रत्येक क्षण, नेति नेति कहते हुए मानव को नवीन अनुसंधान खोज के लिए प्रोत्साहित करती है। ज्ञान को हमेशा जागृत करने की प्रशस्त मार्ग दिखाई देता है। भारतीय वैदिक विचार में उपनिषद् तथा कर्मकाण्ड की प्रधानता होती है जिसमें ब्रह्म को एक अलौकिक स्थान है। यही ब्रह्म चराचर जीवन–जगत प्रकृति, मनुष्य और समाज को तर्कयुक्त सम्बन्ध बनाता है। जिसके मूल शाखा में भारत के मूल धरोहर, वेद, पुराण, उपनिषद्, शास्त्र, सभी कालान्तर में किसी न किसी रुप में एकात्म मानववाद का परिपूर्ति करता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय लगभग दो दशकों के खोज अनुभव के आधार पर चिन्तन करते हुए 'एकात्म मानववाद' के नाम से भारतीय जनसंघ की सैद्धान्तिक नीति से पूर्णाहुत विचारधारा है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने सिद्धान्त रुपी 'एकात्म मानववाद' का सृजन शंकराचार्य से प्रभावित होकर सिद्धान्त का निर्माण किया। आदि शंकराचार्य जो कि अद्वैतवादी विचार चिन्तन थे जिन्होंने भारत के उन्नयन हेतु चारों दिशाओं में अद्वैतवादी मठ का निर्माण किया और मानवता की एक नई सच्ची साधना का स्वरूप स्थापित किया था। पं. दीनदयाल जी कहते हैं कि आज भारत के इतिहास में क्रान्ति लाने वाले दो पुरुषों की याद आती है। एक वह है कि जब जगतगुरु शंकराचार्य सनातन बौद्धिक धर्म का संदेश लेकर देश में व्याप्त अनाचार समाप्त करने चले थे और दूसरा वह कि जब 'अर्थशास्त्र' धारणा का उत्तरदायित्व लेकर संघ राज्यों में बिखरी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित कर साम्राज्य की स्थापना करने श्चाणक्यश् चले थे।[19] आज इस प्रारूप को प्रस्तुत करते समय वैसे ही तीसरा महत्वपूर्ण प्रसंग आया है।

जबकि विदेशी धारणाओं के प्रतिबिम्ब पर आधारित मानव सम्बन्धित अधूरे व अपुष्ट विचारों के मुकाबले विशुद्ध भारतीय विचारों पर आधारित मानव कल्याण का सम्पूर्ण विचार 'एकात्म मानववाद' के रूप में उसी सुपुष्ट भारतीय दृष्टिकोण को नये सिरे से सूत्रबद्ध करने का काम हम प्रारम्भ कर रहे हैं। अतः पं. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा कृतित्व एकात्म मानववाद का उद्गम स्थल आदि जगतगुरु शंकराचार्य और आचार्य चाणक्य के विचार सिद्धान्त से प्रभावित होकर भारत के समन्वित विकास के लिए एकात्म मानववाद की स्थापना किया। इस तरह से पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीय विचार परम्परा में शांकर वेदान्त, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा आत्म गठित विचारधारा श्एकात्म मानववादश् की एक नव 'प्रस्थानत्रयी' की स्थापना किया। इसके साथ ही साथ पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुभव चिन्तन में विभिन्न महापुरुषों के ज्ञान प्रवाह से प्रभावित हुए हैं जैसे स्वामी विवेकानन्द, तिलक, अरविन्द, कबीरदास, संत तुकाराम आदि के एकात्म भाव से भी काफी प्रभावित हुए और समाज, राष्ट्र को एकात्म के सूत्र को स्थापित करने का काम किये हैं।[20] प्राचीन प्रस्थानत्रयीश् के अन्तर्गत 'एकादश' उपनिषद् श्रीमद्भागवत गीता व व्यासश् कृत 'ब्रह्मसूत्र' की गणना किया जाता है।

एकात्मता

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा कृतित्व एकात्म मानववाद का सृजन को स्पष्ट करने के पहले इसके विग्रह भाव स्पष्ट करते है। एकात्मता से तात्पर्य है कि 'यत् पिण्डे ब्रह्माण्डे' के आधार पर समाज सृष्टि का निर्माण हुआ है। अर्थात् जो पिण्ड में विराजमान है वही 'ब्रह्माण्ड' में स्थित है, जो कि विश्व में प्रचलित यह भारतीयता की पहचान है। अंश और सम्पूर्ण मूलतः एक है। इसी मूलतरू तत्व के आधार में 'एकत्व' (अद्वैत) दर्शन का निर्माण हुआ। जो 'पिण्ड' में है वही 'ब्रह्माण्ड' में है, भारतीय दार्शनिकों की यह पुरानी मान्यता है। 'अंश' एवं 'संपूर्ण' तत्वतः एक है,

यह इस दार्शनिक तत्व की निष्पत्ति है। इसमें से 'एकत्व' अथवा 'अद्वैत' के दर्शन का प्रचलन हुआ। सम्पूर्ण चराचर जगत् में एकात्म भाव की अवधारणा भारतीय दर्शन की विशेषता है। 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' जो क्षुद्र में है, वही विराट में भी है। इस व्याख्या के अनुसार 'विराट' अनेक छोटी इकाईयों का योग नहीं है और 'सूक्ष्म' विराट का छोटा टुकड़ा न होकर उसका लघु 'चित्त' है। वृक्ष विराट है, बीज सूक्ष्म बीज में वृक्ष अपनी सम्पूर्ण विशालता सहित समाया हुआ है और सूक्ष्म बीज विराट, व्यष्टि एवं समष्टि तथा मनुष्य एवं समाज में द्वन्द्व नहीं है। एकात्म भाव है, जो जीवन को टुकड़ों में नहीं बांटता। यह खण्ड दृष्टि नहीं, अपितु समग्र दृष्टि प्रदान करता है।[21]

भारतीय जनसंघ का मुख्य उद्देश्य "भारत को उसकी संस्कृति और मर्यादा के आधार पर एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जनतंत्र बनाना है जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो तथा जो भारत को सुदृढ़ एवं सुसम्पन्न बनाते हुए उसे एक प्रगतिशील, आधुनिक और जागरुक राष्ट्र का निर्माण कर जो दूसरे किसी राष्ट्र का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम रहे और विश्व शान्ति की स्थानार्थ राष्ट्र संघ में समुचित रीति से प्रभाव डाल सके। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने 'एकात्मवाद' को विश्लेषित करते हुए कहते हैं कि भारत भूमि की जो आत्मीयता संस्कृति, सभ्यता लिए हुए है वह एकात्मवादी हैं वह भारत ही नहीं अपितु सारा विश्व जो विविध सत्ताओं तथा जीवन के विविध एकात्मवादी अंगों के दृश्य में भेद को स्वीकार करते हुए उनमें एकात्म का तत्व विराजित दिखाई देता है, अलग होते हुए भी एक है। भारतीय संस्कृति परम्परा के तत्वों में प्राचीन भारत में जहाँ जाति, धर्म, परम्परा, रीति–रिवाज, कर्म भेद है लेकिन प्रत्येक में एकात्म भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरणार्थ जैसे भारतीय संस्कृति में एक ईकाई है जजमानी व्यवस्था।

एकात्म मानववाद की दार्शनिक मूल तत्व ईकाई

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी एक कुशल लेखक, राजनीतिज्ञ, तत्व ज्ञाता पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व और कृति एक ऋषि तुल्य था। हमेशा मानवता के कल्याण के लिए अपने लेखन से पूर्णाहुत करते दिखाई पड़ते हैं। उनका एकात्म मनोभाव का एक उद्‌गम सार मिलता है। जिस 'एकात्म मानववाद' संकल्पना की नींव रखी है। उसके विभिन्न औषधि युक्त इकाई है जो एकात्म मानववाद की परिभाषा को पूर्ण क्षितिज प्रदान करता है। वह इकाई एक छोटे तत्वों को मिलाकर एक सिन्धु अथवा सागर के समान एकत्रित कर महासागर का निर्माण करते हैं, जिसका वर्णन इस प्रकार परिभाषित किया जा रहा है।[22]

मानववाद– लामोण्ट के अनुसार– मानवतावाद समस्त मानव जाति का विश्व दर्शन है। जो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के व्यक्तियों और उनकी असंख्य सन्तानों के दार्शनिक एवं नैतिक मार्ग दर्शन में समर्थ हो सकता है। दर्शन का मुख्य उद्देश्य है कि वह मानव व्यवहार में निहित उद्देश्यों, समस्याओं तथा आदर्शो का विश्लेषण और उनका स्पष्टीकरण करें इसलिये दर्शन का उद्देश्य है कि वह विज्ञान, समाजशास्त्र तथा अन्य अध्ययनों के आधार पर विश्वदृष्टि प्रस्तुत करे। बौद्धिक एवं जनतांत्रिक विधियों का अनुसरण करते हुए समस्त मानव के एहिक सुखों कि वृद्धि हेतु सहर्ष सेवा के दर्शन को बीसवी शताब्दी का मानवतावाद कहा जा सकता है।

एकात्म मानववाद का दार्शनिक विवेचन

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद का दर्शन भारतीय समाज के लिए कोई नवीन चिंतन नही है। यह भारत की जीवन दृष्टि है, यह भारत की स्वतः स्फूर्त सहज चेतना है। भारतीय संस्कृति एकात्म है, और जो एकात्म है वही भारत है। एकात्मता ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इतिहास साक्षी है कि भारत में एकात्म भाव का सुप्त होना ही उसके लिए संकट का कारण बना। सामाजिक जीवन में इस एकात्मता की सुप्तता ने ही विदेशी शक्तियों को भारत की राज्य सत्ता पर अधिकार जमाने का अवसर प्रदान किया और अधिकार जमाने के बाद विदेशी शक्तियों ने इस एकात्मता की चेतना को खंडित करने के लिए अपने राज्य शक्ति का प्रयोग किया। दीनदयाल जी द्वारा प्रतिपादित यह एकात्म मानववाद सही अर्थों में देखा जाए तो यह केवल मानव दर्शन न होकर एक परिपूर्ण एकात्म दर्शन है। कारण यह है कि केवल मानव और मानव के बीच सम्बन्धों का ही नही अपितु मानव और मनावेत्तर प्रकृति के सभी व्यवहार स्वाभाविक रूप से इस एकात्म प्रकृति धर्म के अनुसार होते रहते है फिर भी

मानव को इस एकात्मता का नाता प्रयासपूर्वक समझना होता है और उसे ध्यान में रखकर इस एकात्म धर्म का संवर्धन करना पड़ता है।[23]

आज विकास की राह में अग्रसर दुनिया का दृश्य देखकर ऐसा लगता है कि मनुष्य, मनुष्य से संघर्ष कर रहा है, मनुष्य अन्य जीवों के साथ संघर्ष कर रहा है, मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण को नष्ट करने पर तुला है। कही सामंजस्य, मर्यादा और सन्तुलन का नामोनिशान नही है, सर्वत्र संघर्ष ही दिखलाई पड़ रहा है। उसे यह पता ही नही है कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव ही नही है और उसे इसका आभास भी हो गया है तो आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह जिस रास्ते पर अपना कदम बढ़ा चुका है, वह उसे रोके कैसे? क्या इसके समाधान का कोई वैकल्पिक मार्ग है? जिसकी आवश्यकता आज भारत ही नही बल्कि सम्पूर्ण विश्व को है।

उपर्युक्त समस्याओं की ओर देखा जाए तो स्वतंत्रता के बाद जिस मनीषी ने इनका चिंतन कर समाधान देने का प्रयास किया उनमें पं. दीनदयाल जी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उन्होंने आने वाली विभीषिका के प्रति न केवल आगाह किया था अपितु वर्तमान देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप भारत की प्रकृति परम्परा परिवेश को दृष्टि में रखकर भारत की एकात्म चेतना के धरातल पर भावी मार्ग की रूपरेखा प्रस्तुत किया। परन्तु यह दुर्भाग्य रहा है। कि उस सिद्धान्त पर जितना कार्य होना चाहिए उस प्रकार से नही किया गया और न ही देश की नीति निर्धारण में उससे कोई प्रेरणा ली।

वैदिक विचारधारा: वैदिक विचार परंपरा केवल आध्यात्मिक अथवा आत्मा–परमात्मापरक विचार करने वाली परंपरा नही है वह लौकिक समाज की समता व राष्ट्रीय समृद्धि का भी चिंतन करती है। वैदिक विचारधारा ब्रह्मवादी है मानव को ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए प्रेरित व उत्साहित करती है प्रकृति के प्रति विनम्र व पूज्यभाव रखने वाली तथा मानव के जीवन को सुखी करने वाली है। वैदिक परम्परा है कि मनुष्य जैसा आज है वैसा ही आदि सृष्टि के समय बना था। इस कारण यदि यह ज्ञान उसे न दिया जाता तो मनुष्य चलना फिरना भी न सीख सकता। मानव शिशु को यदि आज भी समाज से पृथक कर दिया जाए तो वह पशु समान ही रह जायेगा वह कुछ भी सीख न सकेगा।

वेद को अपौरूषेय माना जाता है अर्थात् वेद ज्ञान को किसी मनुष्य ने अविष्कार नहीं किया। परमात्मा भी इसका उद्‌गाता नही यह ऐसे ही अनादि है जैसा परमात्मा स्वयं तथा जीवात्मा और प्रकृति अनादि है। वेद ज्ञान सदैव रहता है यह कवेल तभी प्रकट होता है जब इसे ग्रहण करने योग्य मनुष्य जैसा प्राणी उत्पन्न होता है। एक ओर जहाँ भारतीय विचारक वेद को अनादि एंव अपौरूषे मानते है वहीं पाश्चात्य विचारक यह बात स्वीकार करने के लिए तैयार ही नही है कि हजरत आदम से पहले का रचित कोई ग्रन्थ मिल जाए। यही कारण है कि ऋग्वेद और वैदिक रिलीजन के लेखक प्रो. कैल्टन ने प्रो. मैक्समूलर के विचारानुसार अपनी पुस्तक (Rigveda and Vedic Religion) मे लिखा है कि वेदो में बच्चों की सी अर्थहीन और असम्बद्ध बाते है।

ऐसे ही मैक्समूलर ने सन् 1868 में अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखा था कि– ''मुझे आशा है कि मैं उस काम को (ऋग्वेद का सम्पादन) पूरा कर दूँगा और उसके तथा वेदों के अनुवाद के छपने से (यद्यपि मैं यह देखने के लिए जीवित नही रहूँगा) भारत और भारत के करोड़ों रहने वालों के भाग्य पर प्रभाव पड़ेगा। यह अनेक धर्म का मूल है और उस मूल के दर्शन कराने से ही उनके पिछले तीन हजार वर्ष से बने प्रभाव को मिटाया जा सकेगा।'' उपर्युक्तत वक्तव्य से पाश्चात्य विचारधारा को समझा जा सकता है। यदि मैक्समूलर आदि ने वैदों का भाष्य किया भी है तो वह द्वेष पूर्ण भाव से जिसका मुख्य उद्देश्य था भारतीयों को निम्न दिखाकर ईसाइयत का प्रचार प्रसार करना।

पं. दीनदयाल जी ईसाइयत की इस घृणित विचारधारा से वाकिफ थे यही कारण है कि प्राचीन विचारों को उन्होंने आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार समाज में विचारो का भेद होना स्वाभाविक है लेकिन विचार भेद के कारण लक्ष्य भेद नही होने चाहिए। वैचारिक सहिष्णुता का प्रतिपादन कैसे होना चाहिए इसको ऋग्वेद में कहा गया है:

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

अर्थात् सत्य एक है, विद्वान लोग उसको अनेक प्रकार से बखानते हैं:

अदीनाः स्याम शरदः शतम्।

अर्थात् शुभ संकल्पों के साथ दीनता रहित होकर हम सौ वर्ष तक जिए

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

अर्थात् मेरा मन उत्तम संकल्प वाला हो।

उपार्जन एवं दान का महत्व बताते हुए वैदिक ऋषि कहते है कि– शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स किर।

अर्थात् सैकड़ों हाथों से अर्जन करो और हजारों हाथों से बाँटों इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारतीय दृष्टिकोण में व्यापकता व्याप्त है वही पाश्चात्य दृष्टि में क्षुद्रता है। पं. दीनदयाल जी का चिन्तन समग्रतामूलक है। उनकी दृष्टि सर्वथा स्पष्ट है कि भारतीय चिंतन परम्परा का ऐसा विकास किया जाए कि वह अधुनातन विश्व विचार परम्परा का एक सार्थक हिस्सा बन सके।

श्रीमद् भगवद्गीता

विश्व साहित्य में श्रीमद्भगवदगीता का अद्वितीय रथन है यह साक्षात् भगवान की श्रीमुख से निःसृत परम रहस्यमयी दिव्यवाणी है। सभी महान आत्माएँ गीता को ही आधार ग्रंथ मानते थे। गीता उनके लिए ऊर्जा का स्रोत थी। सभी महापुरुष यह स्वीकारर करते हैं कि गीता का संदेश हर युग की हर परिस्थिति में तथा हर व्यक्ति के लिए उपयोगी और कल्याणकारी रहा है। भविष्य में भी रहेगा क्योंकि यह देववाणी है इसीलिए यह शास्वत है। इसमें मानवजाति के कल्याण के लिए कर्मयोग ज्ञानयोग तथा भक्ति योग का संदेश दिया गया है। दीनदयाल जी का सम्पूर्ण कार्यव्यवहार गीता के उपदेशों से प्रभावित रहा है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के निष्काम कर्मयोगी की तरह जीवन जिया राष्ट्र धर्म के लिए उनकी ज्ञान और भक्ति थी। जो लोग गीता को मात्र धर्म–कर्म करने वाला ग्रन्थ मातने हैं वे बड़ी भूल कर रहे हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश अर्जुन को उसकी मृत्यु अथवा वृद्धावस्था के समय नहीं दिया था अपितु यह उपदेश युद्धभूमि के मध्य दिया गया था जिसे सुनकर अर्जुन धर्मयुद्ध में मरने–मारने के लिए तैयार हो गया था। अतः यह निश्चित है कि गीता का उपदेश प्रेरणा देने वाला है। यही कारण रहा है कि स्वतंत्रता की बलिवेदी पर भारतीय क्रांति की चिंगारी गीता से ही फैली। सभी क्रान्तिकारी हाथ में गीता की प्रति लेकर प्रसन्नता पूर्वक फाँसी के फन्दे पर झूलने को तैयार हो जाते थे।

युद्ध एक कर्म है। कर्म धर्मयुक्त भी हो सकता है तथा अधर्मयुक्त भी धर्म की स्थापना के लिए किया गया युद्ध धर्म–कर्म ही माना जायेगा। आधुनिक समय में ऐसी मान्यता बढ़ रही है कि राजनीति में धर्म का समावेश नही करना चाहिए। यह मात्र अज्ञानता है। दीनदयाल जी धर्म को राजनीति के लिए प्रमुख मानते थे। धर्म मात्र मानवजाति से सम्बन्धित शब्द नहीं है धर्म से सम्पूर्ण सृष्टि जाल आबाधित है सर्व चर–अचर सचेतन अचेतन अपने अपने अस्तित्व के लिए धर्म पर आश्रित हैं। उसी में उसका अपनापन है। हमारे पूर्वजों ने कहा है कि– धर्म ही है विश्व में सबका अधिष्ठान, धर्म में ही सब प्रतिष्ठित है, अतः धर्म महत्तम माना जाता है।

दीन दयाल जी धर्म को ईश्वर से भी बड़ा मानते थे। वे कहते हैं कि यदि बुरा न लगे तो कह सकते हैं कि ईश्वर से भी बड़ा धर्म है। इसलिए सृष्टि चलती है राजा धर्म राज्य के प्रमुख के वह धर्म से चलता नाते ही विष्णु है। ईश्वर जब जन्म लेता है तो मनमानी करने के लिए नहीं, वरन् अधर्म के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए है ईश्वर का अवतार धर्म के लिए होता है। इसलिए ईश्वर भी सब कुछ कर सकता है परन्तु अधर्म नहीं कर सकता। गीता का उपदेश तथा सन्देश वे केवल जीवन के मोक्ष के लिए नही मानते थे उनका कर्म तथा धर्म, समाज और राष्ट्र के लिए था। उनके विचार से धर्म व्यक्ति और समाज की प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है यदि समाज जीवन से धर्म निकाल दिया जाए तो फिर पशुत्व ही शेष बचता है। दीनदयाल जी कहते है कि धर्म को छोड़कर वैभव मिला तो वह वैभव नहीं है, पराभव है, हो सकता है मन की विकृति के कारण पराभव को ही हम वैभव समझ बैठे।

उपनिषद्

उपनिषद् उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु से निष्पन्न होता है। सद् धातु के चार अर्थ होते है– बैठना नाश करना (विसरण) प्राप्त करना (गति) और शिथिल करना 'उप' का अर्थ है समीप और नि का अर्थ है– ध्यानपूर्वक अतः उपनिषद का शाब्दिक अर्थ हुआ, शिष्य का गुरु के समीप ध्यानपूर्वक परम तत्व का गूढ़ उपदेश सुनने के लिए बैठना, जिससे शिष्य की अविद्या का नाश होता है उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है तथा उसके कर्म बंधन एंव तज्जन्य दुःख आदि का शिथिलीकरण हो जाता है।

सभी उपनिषदों का निष्कर्ष है कि जगत् सत्य है इसका ज्ञान ही सत्य ज्ञान है और इस जगत में तीन अक्षर पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। इन तीन अक्षरों के अतिरिक्त ब्रह्म के जानने वाले भी इस परम सत्य में उपस्थित है, वह परम सत्य परम ब्रह्म है। दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्मता उपनिषद का केन्द्रीय विचार है। उपनिषदों में आत्मतत्व का चिन्तन अत्यन्त स्पष्ट एवं विशद् रूप में किया गया है। आत्मा और ब्रह्म एक ही है तथा एक ही आत्मा जगत् के सारे पदार्थों में व्याप्त है। मुण्डक उपनिषद में आत्मा को ही समस्त पदार्थो की उत्पत्ति का आधार बताते हुए कहा गया है, सब कार्यों का चेतनामय समुच्चय ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ है यह ब्रह्म से सर्वथा भिन्न नही है ब्रह्म विशुद्ध व्यक्ति रूप है नितान्त आत्मा स्वरूप है और एक एवं अद्वितीय है उस जैसी दूसरी कोई सत्ता नहीं है। एक समय में उसे कर्ता अर्थात ईश्वर के रूप में देखा जाता है और अन्य समय में कार्यरूप में अर्थात् हिरण्य गर्भ के रूप में यहाँ तक कि यह हिरण्यगर्भ ब्रह्म भी ब्रह्म के अन्दर से आता है वही ब्रह्म का उद्गम स्थान है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एकात्ममानववाद में प्रतिपादित एकात्मता की अवधारणा का उपनिषदिक अवधारणा में साम्य है। उपनिषदों का सम्पूर्ण प्रयास इसी तथ्य को उद्घाटित करने में निहित है कि आत्मा का साक्षात्कार ही मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य है एकात्म मानववाद का आधारभूत तत्व भी उपनिषदों को एकात्मता के विचार में बीज रूप में निहित है। इस उपनिषदिक चिन्तन को ही उन्होंने एकात्मवादी विचारों के सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया है।

व्यष्टि

मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नही है वह शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का समुच्चय है। मनुष्य के सुख की कल्पना प्रायः एकांगी हुआ करती है उसकी भावना यह रहती है कि इन्द्रियों द्वारा मिलने वाला सुख, अर्थात् शरीर का सुख ही सम्पूर्ण सुख है, परिणामतः उसकी दौड़ इसी प्रकार का सुख अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए होती है। रोगमुक्त शरीर, हाथ में भरपूर पैसा रहने के लिए सभी सुख–सुविधाओं से युक्त घर सुन्दर पत्नी, अच्छा भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण आदि बातों की अनुकूलता तथा समाज में प्रतिष्ठा या अधिकार यही सामान्यतः मनुष्य को सुखी जीवन के बारे में कल्पनाएँ हुआ करती हैं संक्षेप में कहा जा सकता है विविध विषय भोगों की पूर्ति ही सुख सर्वस्व है, ऐसा उसका भाव बन गया है। सामान्यतः जीवन में भौतिक सुखों का महत्व निर्विवाद रूप से सत्य है। मानव के जीवन में इन सुखों का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु शरीर सुख सर्वस्व नही होता है। मानव का शरीर के साथ मन भी हुआ करता है। विविध इन्द्रियों द्वारा वस्तुओं का स्वाद चखने के कारण प्राप्त होने वाले सुख की अनुभूति मानव मन के द्वारा ही हुआ करती है, यह सच है, फिर भी मन का भी अपना सुख–दुःख हुआ करता है।

मनुष्य के सुख के बारे में विचार करते समय केवल शरीर और मन का विचार करने से भी काम नही चलता है उसके साथ बुद्धि भी होना आवश्यक है। मनुष्य की बुद्धि अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत विकसित होती है जहाँ मानवेतर प्राणियों की बुद्धि आहार निद्रा भय मैथून या तत्सम सुखों अथवा आवश्यकताओं तक सीमित होती है। वही मानव की बुद्धि अनेकानेक श्रेष्ठ विचारों को व्यापक बनाती है। यही नही बुद्धि के सुख से भी श्रेष्ठ सुख आत्मसुख की कल्पना करती है। मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि के सुख का विचार करते समय आत्म–सुख का विचार भी आवश्यक हो जाता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी इसे ही अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के समुच्चय को व्यष्टि कहते हैं आदि भौतिक शरीर तथा आध्यात्मिक चेतना (आत्मा) मिलकर 'मन' तथा बुद्धि को प्रकाशित करते हैं। इन चारों के संतुलन

को ही वे मानव का व्यक्तिकरण मानते हैं। यही व्यष्टि है। उनके अनुसार श्व्यक्ति न तो पृथक रूप से पूर्ण सत्ता है तथा न ही अपूर्ण वरन् वह समष्टि तथा सृष्टि के साथ श्एकात्म सत्ता है। सृष्टि समष्टि व व्यष्टि एक अविभक्त इकाई है। ऊपर से दिखाई देने वाली यह तीनों इकाईयाँ तत्वतः एक ही हैं। अतः भौतिकवादियों के व्यक्तिवाद व समाजवाद की मूल अवधारणा को ही वे नकारते हैं। उनके अनुसार– मानव की प्रगति का अर्थ है– शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा इन चारों की प्रगति। बहुत बार लोग समझते हैं और इस बात का प्रचार भी किया जाता है कि भारतीय संस्कृति केवल आत्मा का विचार करती है, शेष के बारे में वह विचार नही करती परन्तु उनके अनुसार इस प्रकार के कथन सत्य नहीं है। आत्मा का विचार अवश्य किया जाता है किंतु यह सत्य नही है कि हम शरीर, मन, बुद्धि का विचार नही करते अन्य लोगों ने तो केवल शरीर का विचार किया है। इसलिए आत्मा का विचार हमारी विशेषता हो गयी। कालांतर में इस विशेषता ने लोगों में एकांतिकता का भ्रम पैदा कर दिया।ष् इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके दर्शन का मुख्य अंग भौतिक प्रगति के है।

साथ ही आध्यात्मिक उन्नति भी है उनके एकात्म मानव दर्शन में सुख की कामना एकांगी नही है। वह व्यक्ति का विचार समग्र दृष्टि से करता है और इतना ही नहीं अपितु मनुष्य के अन्दर जो सत्प्रवृत्तियाँ होती है उनका उन्नयन करता है, विकास करता है। भोग से मिलने वाले सुख का यहाँ सामान्यतया विरोध नहीं है, किन्तु संयम और त्याग में उच्च कोटि का असीम सुख होता है, इसका बोध कराने वाला यह दर्शन है अधिकार को आकांक्षा को त्याज्य नही माना गया है, किन्तु अधिकार को कर्तव्य के ढाँचे में जड़ने का आग्रह अवश्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि शरीर के साथ ही मन, बुद्धि और आत्मा का, उपभोग के साथ संयम और समर्पण का अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यों का, व्यक्ति के साथ–साथ समष्टि– सृष्टि परमेष्टि का निरन्तर भान रखकर चलने वाला एकात्म सुख ही इस दर्शन का मुख्य बिन्दु है।

समष्टि

परिवार व्यक्ति को समष्टि जीवन का पहला पाठ देने वाली संस्था है। आपस में स्नेह, एक दूसरे के लिए कष्ट उठाने की प्रवृत्ति सहन शीलता आदि कई सद्गुणों के संस्कार जिनकी समाजधारणा के लिए आवश्यकता होती है। परिवार जीवन में स्वाभाविक रूप से मिल जाते हैं परिवार की इस कल्पना को अत्यधिक विशाल करते जाना उसको समाजव्यापी व विश्वव्यापी बनाना ही विकास की दिशा है, जो कि एकात्म मानव दर्शन का मुख्य बिन्दु है। एकात्म मानव दर्शन की दृष्टि से परिवार का महत्व अधिक है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति को अहम् से वयम् की ओर ले जाने के अर्थात् समष्टि जीवन के पहले पाठ पवार में ही दिये जाते हैं परिवार में सबके साथ आत्मीयता के सम्बन्धों को प्रत्यक्ष में अनुभव भी किया जाता है घर में कोई मंगल कार्य आ जाये तो परिवार में सभी लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार हाथ बटाते हैं।

पाश्चात्य देशों में परिवार संस्था तेजी से टूट रही है। दुर्भाग्य से हमारे यहाँ भी परिवार की परिधि संकीर्ण होती जा रही है। किसी भी संस्था के सुचारुरूप से सचालन के लिए अनुशासन की अपेक्षा होती है। परिवार भी अपवाद नही है। परिवार रूपी संस्था में व्यक्ति स्वतंत्र तो होता है, फिर भी परिवार के सुख के लिए हित के लिए व्यक्ति को कभी–कभी न्यूनाधिक मात्रा में अपनी स्वतंत्रता को कुछ सीमित करना पड़ता है, बड़ों की बात सुननी पड़ती है। सुखों के भोग पर अपने आप कुछ सीमाएँ पड़ जाती हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार परिवार एक कृत्रिम संस्था है। उनके मतानुसार यह पूँजीवादी समाज व्यवस्था की संतान है व्यक्ति और मानव के बीच परिवार एक रोड़ा है, इसलिए परिवार संस्था को नष्ट करना पड़ेगा। रुस और चीन में इसी दृष्टिकोण से अनेक प्रकार के कम्यूनों की स्थापना की गयी। परिवार के साथ ही समाज जुड़ा हुआ है। दीनदयाल जी के अनुसार– समाज एक जीवमान एवं प्राकृतिक इकाई है यह केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नही है। समाज बनते नहीं पैदा होते हैं। समाज का भी अपना एक सामूहिक मन होता है। सामूहिक बुद्धि होती है, उसकी एक सामान्य इच्छा भी होती है।

व्यक्तियों के जोड़ का नाम समाज नहीं है। समाज स्वयंभू है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को समाज पूर्ण करता है।

व्यक्ति समाज का दृष्यमान प्रतिनिधि होता है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाज व्यक्तियों का सामूहिक व्यक्तित्व है अतः व्यक्ति बनाम समाज अथवा समाज बनाम व्यक्ति के सभी कारणों की वे बौद्धिक विभ्रम मानते हैं। समाज स्वयंभू एंव स्वयंपूर्ण है कोई इकाई इसका पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती। समाज का पूर्ण प्रतिनिधित्व न तो कोई व्यक्ति विशेष करता हैं, न जाति विशेष न सम्प्रदाय विशेष तथा न राज्य विशेष ही ये सब वे इकाईयाँ है जो समाज के विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करती हैं। समाजवाद के नाम पर चलने वाले राज्यवाद के वे कटु आलोचक हैं।

यह बात सत्य है कि समाज व्यक्तियों का एक समूह होता है, फिर भी व्यक्ति एकत्रित हो गये और उन्होंने समाज का निर्माण किया. ऐसा नही है, समाज कोई क्लब नही है, ज्वाइट स्टॉक कम्पनी नही है या सहकारी संस्था भी नहीं है। समाज इस प्रकार कृत्रिमता से नहीं बनाया जा सकता। समाज अपनी रक्षा के लिए जीवन के आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिए और विकास के लिए अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ और संस्थाएँ स्थापित करता है। शिक्षा के लिए गुरुकुल संस्था, देश की अन्तर्बाह्य रक्षा के लिए राज्य संस्था, व्यक्ति और समाज के विकास के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था आदि प्राचीन भारतीय संस्थाओं का इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेख किया जा सकता है विधि मण्डल, नगर पालिका, सहकारी संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि आज के युग की संस्थाएँ इसी प्रकार की हैं।

निष्कर्ष

दीनदयाल जी समाज की उत्पत्ति के लिए जहाँ भारतीय सिद्धान्त को सही ठहराते हैं वही पाश्चात्य सामाजिक समझौता सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए परस्पर समझौता करके समाज का निर्माण किया, इस विचार को वे गलत अस्वाभाविक मानते हैं ये तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि जन्म के लिए व्यक्ति को माता–पिता की आवश्यकता होती है। माता–पिता का अस्तित्व ही समाज की अस्मिता का परिचायक है। व्यक्ति अपना नाम, भाषा, सुख दुखानुभूति आदि समाज से प्राप्त करता है अतः वह समाज का निर्माता नही हो सकता। व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति का व्यक्तिवादी पश्चिमी सिद्धान्त इस सामाजिक समझौते की गलत अवधारणा पर आधारित है।

सन्दर्भ सूची

1. एकात्म दर्शन, दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान, नई दिल्ली, अध्ययन–1, राष्ट्रवाद की नई कल्पना पृ. 10।
2. उपरोक्त अध्याय–2, पृ0 18 एकात्म मानववाद 4, उपरोक्त, अध्याय–1, पृ. 11।
3. श्री अरविन्द, एशिया की भूमिका, 'वन्दे मातरम्' ये लिखा गया लेख 'यूरोप और एशिया', 03 जुलाई 1908, पृ. 69–71।
4. एकात्म दर्शन, दीनदयाल उपाध्याय, नई दिल्ली, अध्याय–4, राष्ट्रजीवन के अनुकूल रचना, पृ. 72।
5. पांजन्य, 21 फरवरी 1966, पृ0 10, उत्तर प्रदेश संघ के मुरादाबाद अधिवेशनों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का भाषण।
6. राजस्थान संघ संगर, 04 जून 1964 का बौद्धिक वर्ग पृ. 11।
7. बौद्धिक वर्ग पंजिका, दिल्ली, 18 जून 1962, पृ. 158।
8. शर्मा महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय (कर्तव्य एवं विचार) एकात्म मानववाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 329।
9. एकात्म दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, अध्याय–2, राष्ट्रवाद की सही कल्पना, पृ. 17।
10. जोशी मुरली मनोहर, भौतिकी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान में आयोजित दीनदयाल जयन्ती पर 25 सितम्बर 1984 में दिये गये भाषण, पृ. 03।
11. देवधर विश्व नाराण, *पं. दीनदयाल उपाध्याय, विचार–दर्शन (व्यक्ति दर्शन),* सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 74।

12. उपाध्याय दीनदयाल, *विचार–दर्शन कर्तव्य एवं विचार,* सुरूचि प्रकाशन, दार्शनिक अभिधारणायें, पृ. 316।
13. रिचर्ड ल्यूई नैटिल'प, प्लेटो के रिपब्लिक का विवेचन अनुवादक, गौरीलहरी, भोपाल, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1973, पृ. 55–56।
14. शर्मा महेन्द्र चन्द्र, *पं. दीनदयाल उपाध्याय (कर्तव्य एवं विचार),* प्रभात प्रकाशन, दार्शनिक अवधारणायें, पृ. 320।
15. उपाध्याय दीनदयाल, *विचार दर्शन,* खण्ड–6, सुरूचि प्रकाशन केशव पुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 143।
16. उपाध्याय, दीनदयाल, *विचार–दर्शन,* राजनीति राष्ट्र के लिये, खण्ड–6, सुरूचि प्रकाशन, केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 198।
17. उपाध्याय, दीनदयाल, *विचार–दर्शन,* खण्ड–6 उपरोक्त, पृ. 39–40।
18. शर्मा, महेश चन्द्र, *दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार,* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 292।
19. नाना जी देशमुख से भेंट वार्ता, साक्षात्कार पत्रिका, 01 जनवरी 1984, दिल्ली, पृ. 26।
20. माथुर जगदीश प्रसाद, जनसंघ के मूल विचारक पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 60–61।
21. सिंह राजनीति, 'जब वे चुनाव लड़े, राष्ट्र धर्म दीनदयाल उपाध्याय, स्मृति, अंक जून–जुलाई 1968।
22. वाजपेयी अटल बिहारी, टियरफुल ट्रिब्सूट्स, ऑर्गेनाईज़र, 25 फरवरी 1968।
23. शर्मा महेश चन्द्र, *दीनदयाल उपाध्यायः कर्तव्य एवं विचार,* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, राजनीतिक विचार, 2008 पृ. 169।

——==00==——